जनसत्ता

26 दिसंबर, 2019

लोकतंत्र का रास्ता

पश्चिम बंगाल में राज्यपाल और राज्य सरकार के बीच चल रही प्रत्यक्ष-परोक्ष तनातनी में कुछ सुधार होने के बजाय स्थिति और बिगड़ती जा रही है, तो इससे यही जाहिर होता है कि दोनों पक्षों के बीच संवाद में कोई बड़ी कमी है। लेकिन मंगलवार को जैसी स्थिति पैदा हुई, वह न तो लोकतंत्र के लिए उचित है, न राजनीतिक उथल-पुथल से उपजी समस्या को दूर करने में उससे कोई मदद मिलेगी। गौरतलब है कि राज्य के राज्यपाल और कुलाधिपति जगदीश धनखड़ जादवपुर विश्वविद्यालय के वार्षिक दीक्षांत समारोह में भाग लेने गए थे, लेकिन वहां भारी संख्या में जमा प्रदर्शनकारियों ने उन्हें परिसर में प्रवेश करने से रोक दिया और आखिरकार उन्हें वापस लौटना पड़ा। दरअसल, वहां जमा बड़ी तादाद में विद्यार्थी नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे थे और नारे लगा रहे थे। विद्यार्थियों के मुताबिक उन्होंने पहले से ही तय कर लिया था कि वे दीक्षांत समारोह में कुलाधिपति के हाथों से डिग्री नहीं लेंगे। हो सकता है कि संबंधित विद्यार्थी किसी खास मुद्दे पर विरोध स्वरूप राज्यपाल के हाथों डिग्री नहीं लेने की राय रखते हों और यह उनका लोकतांत्रिक अधिकार है, लेकिन एक निर्धारित कार्यक्रम में राज्यपाल को भाग लेने से रोकने को कितना उचित माना जाएगा?

यह बेवजह नहीं है कि राज्यपाल ने इस संबंध में प्रतिक्रिया देते हुए साफ शब्दों में कहा कि यह घटना विश्वविद्यालय में कानून के राज की गंभीरता से समझौता किए जाने का उदाहरण है। किसी मुद्दे पर विरोध जताना या प्रदर्शन करने के अधिकार के समांतर अगर कोई समूह कानून और शासन को ताक पर रख देता है तो निश्चित रूप से यह एक गंभीर स्थिति है। यह राज्य सरकार और पुलिस की जिम्मेदारी है कि वह ऐसी अप्रिय स्थिति नहीं पैदा होने दे। लेकिन अगर वहां मौजूद प्रदर्शनकारियों के विरोध की वजह से राज्यपाल को लौटना पड़ा तो यह अपने आप में वहां की ड्यूटी के लिए जवाबदेह पुलिसकर्मियों की नाकामी है। आखिर पुलिस जादवपुर विश्वविद्यालय के बाहर मौजूद प्रदर्शनकारियों के बीच से राज्यपाल को परिसर में सुरक्षित ले जाने में कैसे नाकाम रही? अगर पर्याप्त पुलिसकर्मियों की तैनाती नहीं थी, तो इसका कारण क्या था? इसके अलावा, खबरों के मुताबिक अगर कुलाधिपति या राज्यपाल ने कुलपति को नियम-पुस्तिका के अनुसार चलने और दीक्षांत समारोह के संबंध में स्पष्ट निर्देश दिए थे, तो उसका पालन करने को लेकर लापरवाही की वजह क्या हो सकती है? इस मामले में नियम-कायदे क्या कहते हैं?

विडंबना यह है कि राज्य में राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच आपसी बयानबाजी से उपजी तनातनी का असर सामान्य गतिविधियों पर भी पड़ रहा है। हाल में राज्य सरकार ने एक नए नियम के तहत कुलाधिपति और राज्य के विश्वविद्यालयों के बीच प्रत्यक्ष संवाद का माध्यम उच्च शिक्षा विभाग के जरिए तय कर दिया। इसी तरह के मतभेद की पृष्ठभूमि में सत्ताधारी तृणमूल कांग्रेस ने राज्यपाल पर राज्य में समांतर सरकार चलाने का आरोप लगाया था। लेकिन बात शायद तब ज्यादा बढ़ गई जब सीएए के खिलाफ रैली आयोजित करने और उसमें मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के भाग लेने पर राज्यपाल ने एक ट्वीट के जरिए आपत्ति जताई। जहां तक नागरिकता संशोधन कानून और राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर पर विरोध जताने का सवाल है, तो देश के अलग-अलग हिस्से में इस मसले पर विरोध प्रदर्शन जारी हैं। इस पर व्यापक बहस भी चल रही है। लेकिन शासन के सामान्य कामकाज को सहजता से चलने देने से किसे दिक्कत हो सकती है? आखिर इन कामों का अंतिम लाभ आम जनता को ही मिलता है।

पाक की मुश्किल

आतंकवाद रोकने और आतंकी संगठनों के खिलाफ कड़े कदम उठाने को लेकर पाकिस्तान का संकट गहराता जा रहा है। अगर उसने वित्तीय कार्रवाई कार्यबल (एफएटीए) की ओर से निर्धारित मानकों को पूरा नहीं किया तो अगले साल फरवरी तक उसे काली सूची में डालने की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। अगर ऐसा हुआ तो पहले से आर्थिक संकटों का सामना कर रहे मुल्क के सामने कंगाली जैसे हालात बन सकते हैं। दो दिन पहले अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आइएमएफ) ने जारी एक रिपोर्ट में इस बात की आशंका व्यक्त की है कि अगर एफएटीए पाकिस्तान को काली सूची में डाल देता है तो पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था ढह जाएगी। आइएमएफ को इस बात का डर है कि उसने पाकिस्तान को अरबों डॉलर का जो कर्ज दे रखा है और अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए पाकिस्तान सरकार के साथ जो कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, उनका क्या होगा? एफएटीए की कार्रवाई पाकिस्तान को महंगी इसलिए पड़ेगी कि काली सूची में डाले जाने के बाद पाकिस्तान में बाहरी निवेश को जोरदार झटका लग सकता है। जाहिर है, किसी आतंकी देश में कोई अपनी पूंजी क्यों लगाएगा?

आतंकवाद को लेकर पिछले कुछ सालों में पाकिस्तान पर शिकंजा तेजी से कसा है। अमेरिका और यूरोपीय देशों की पहले से ही यह संभव हुआ है। एफएटीए इन्हीं देशों की पहल पर बना संगठन है जो दुनिया के उन मुल्कों के खिलाफ कड़े प्रतिबंध लगाता है जो अपनी जमीन से आतंकवादी कार्रवाइयों को अंजाम देते हैं और आतंकवाद संगठनों को पालते-पोसते हैं। पाकिस्तान के बारे में तो सारी दुनिया एकमत है कि वह दुनिया का सबसे बड़ा आतंकी देश है। यह बात खुद उसका सबसे पुराना हमदर्द और मददगार देश अमेरिका कहता आया है। भारत पिछले तीन दशक से पाकिस्तान के आंतक की मार झेल रहा है। एफएटीए पाकिस्तान से इसलामिक स्टेट, अलकायदा, जमात-उद-दावा, लश्करे तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद, हक्कानी नेटवर्क और तालिबान से जुड़े लोगों के खिलाफ सख्त कदम उठाने को लेकर चेतावनी देता रहा है, लेकिन हकीकत में अब तक ऐसा कुछ भी होता नहीं दिखा है। इस साल अगस्त में भी एफएटीए के एशिया प्रशांत समूह ने पाकिस्तान को अंतिम चेतावनी जारी की थी।

पाकिस्तान को 2012 से 2015 के दौरान भी एफएटीएफ की निगरानी सूची में रखा गया था। लेकिन उसने ऐसा कोई कदम नहीं उठाया, जिससे यह पता चलता कि वह आतंकी संगठनों के खिलाफ कड़े कदम उठा रहा है। आतंकवाद का रास्ता देश को कंगाली के रास्ते पर ले जाना वाला है, यह पाकिस्तानी हुक्मरानों को सोचना चाहिए। विश्व बैंक भी पाकिस्तान को चेता चुका है। पाकिस्तानी रुपए में गिरावट का दौर जारी है। देश में महंगाई लगातार बढ़ रही है। विदेशी मुद्रा का भंडार पहले से ही पैंदे में जा चुका है। पाकिस्तानी मुद्रा के अवमूल्यन ने हालात और मुश्किल बना दिए हैं। तेल, गैस और सीएनजी की किल्लत से न सिर्फ लोग परेशान हैं, उद्योग-धंधे तक ठप पड़े गए हैं। सरकार गैस और तेल के दाम बढ़ाने की तैयारी में है। दूसरी ओर देश में बेरोजगारी चरम पर है। ऐसे में अगर पाकिस्तान को काली सूची में डाल दिया गया और कड़े प्रतिबंध लगा दिए गए तो उससे देश में हालात बनेंगे, वे आज के मुकाबले कहीं ज्यादा भयावह होंगे। पाकिस्तान के पास अब भी वक्त है कि वह एफएटीए के मुताबिक चले। फैसला उसे ही करना है कि आतंकवाद को चुने या अमन को।

कल्पमेधा

अपनी प्रसिद्धि और स्मृति के लिए
मैं दूसरों की दया और कृपा
पर निर्भर हूं।

– बेकन

बिजली घरों से फैलता अंधेरा

अखिलेश आर्येंदु

बिजली घरों से निकलने वाली काली राख से हजारों एकड़ भूमि बंजर होती जा रही है, उसका कोई उपयोग नहीं हो पा रहा है और आसपास की उपजाऊ जमीन भी इसके असर से बंजर होती जा रही है। इतना ही नहीं, आंधी और तूफान आने पर यह राख हवा में मिल कर सांस, त्वचा और आंख के रोग पैदा कर रही है।

देश में जितनी बिजली बनाई जाती है, उसमें से साठ फीसद जीवाश्म कोयले से बनती है। बाकी छब्बीस फीसद बिजली का उत्पादन पानी से और चौदह फीसद बिजली उत्पादन अन्य तरीकों से होता है, जिसमें यूरेनियम और थोरियम से बनने वाली बिजली महज दो फीसद है। जाहिर है, देश में कोयले से चलने वाले बिजली घर ही ज्यादा हैं और इनसे सबसे ज्यादा अपशिष्ट निकलते हैं, जिसमें काली राख की भरमार होती है। चिंता की बात यह है कि सरकार की नजर में इसका कोई उपयोग नहीं है। इसलिए बिजली घरों के आसपास करोड़ों टन काली राख फैली रहती है और यह पर्यावरण को ही नहीं, भूमि और जल को भी प्रदूषित कर रही है।

कोयले से चलने वाले बिजली घरों से निकलने वाले अपशिष्टों को ठिकाने लगाने की न तो भारत सरकार के पास कोई योजना है, न राज्य सरकारों के पास। बिजली मंत्रालय का मानना है कि यह ऐसा व्यर्थ का पदार्थ है जिसका किसी भी रूप में कोई उपयोग नहीं हो सकता। ताज्जुब की बात यह है कि आज वैज्ञानिकों ने धरती पर हर चीज का उपयोग किसी न किसी रूप में करने का तरीका ईजाद कर लिया है, लेकिन बिजली बनाने के दौरान कोयले से निकलने वाले इस अपशिष्ट के कोई बेहतर उपयोग का विकल्प आज तक नहीं खोजा जा सका है। ऐसा नहीं है कि इसका कोई उपयोग नहीं है। इसका उपयोग है, लेकिन सरकार इस तरफ गौर ही नहीं करती। इस वजह से इसके बेहतर उपयोग के बारे में कोई अनुसंधान भी नहीं हुआ है। दुनिया के विकसित कहे जाने वाले देशों ने कार्बन को दफनाने तक की समस्या का निदान खोज लिया है, जो कभी असंभव माना जाता था। ग्रीन हाउस की समस्या से निजात पाने की विधि खोज ली गई है, लेकिन भारत में करोड़ों टन कोयले के अपशिष्ट के इस्तेमाल का रास्ता आज तक नहीं निकल पाया है।

बिजली घरों से निकलने वाली काली राख से हजारों एकड़ भूमि बंजर होती जा रही है, उसका कोई उपयोग नहीं हो पा रहा है और आसपास की उपजाऊ जमीन भी इसके असर से बंजर होती जा रही है। इतना ही नहीं, आंधी और तूफान आने पर यह राख हवा में मिल कर सांस, त्वचा और आंख के रोग पैदा कर रही है। चिंता की बात यह है कि इससे सांस संबंधी अनेक रोग पैदा होते हैं और इसके संपर्क में लगातार काम करने वाले मजदूरों की असमय में मौत हो जाती है। तो क्या कोयले के इस अपशिष्ट से इसके आसपास रहने वाले लोगों को कई तरह की समस्याएं नहीं होती होंगी? जमीन और हवा के अलावा इस अपशिष्ट से बिजली घरों के आसपास जल स्रोत ही नहीं नहर, तालाब और कुए तक जहरीले होते जा रहे हैं। वैज्ञानिकों के मुताबिक कोयले से निकलने वाला हर अपशिष्ट चाहे वह गैस हो या राख, इससे मानव शरीर, मस्तिष्क और मन पर प्रतिकूल असर डालते ही हैं। इसलिए इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि कोयले की राख से कोई समस्या इंसान को सीधे तौर पर नहीं हो सकती है।

दिल्ली और फरीदाबाद में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। हवा में घुले जहर के कारण लोग गंभीर बीमारियों की चपेट में आ रहे हैं। देश-विदेश के बड़े-बड़े वैज्ञानिक 'प्रदूषण मुक्त दिल्ली' बनाने में जुटे हैं, लेकिन यह समस्या अभी काबू में नहीं आ पाई है। दिल्ली में प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण वाहनों से निकलने वाला धुआं बताया जाता है, लेकिन कोयले के निकलने वाले अपशिष्ट से दिल्ली की आबोहवा कितनी प्रदूषित है, इस पर वैज्ञानिक और पर्यावरणविद् कुछ कहते नजर नहीं आते। पॉलिथिन, यमुना का गंदे नाले में तब्दील होने और रेत माफियों द्वारा अवैध तरीके से किए जा रहे खनन पर्यावरण की समस्या पैदा करते हैं और इनके खिलाफ आंदोलन भी चलाए जा रहे हैं, लेकिन बिजली घरों से उत्सर्जित होने वाली राख को लेकर कोई चिंतित नजर नहीं आता।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से उत्पन्न समस्याओं पर भारत से कहीं ज्यादा विदेशों में अनुसंधान किए जा रहे हैं। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में तिहत्तर फीसद योगदान ऊर्जा का होता

है। वैश्विक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में बिजली और ताप आधारित उपक्रमों की हिस्सेदारी 24.6 फीसद है और परिवहन क्षेत्र की हिस्सेदारी महज दस फीसद है। ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में भारत पांचवे स्थान पर है और इसके बढ़ने की रफ्तार काफी ज्यादा है। आने वाले पांच वर्षों में यह रफ्तार बढ़ कर पांच गुना तक पहुंच सकती है। जरूरत इस बात की है कि बिजली घरों के ईंधन कोयले और इसके अपशिष्ट से होने वाले प्रदूषण पर भी गहराई से ध्यान दिया जाए और इसके उपयोग के लिए कोई मुकम्मल रास्ता तलाशा जाए।

भारत में परमाणु रिएक्टरों से भी बिजली बनाई जा रही है, लेकिन अभी देश में इसका उत्पादन महज दो फीसद है। परमाणु रिएक्टरों से कुल बीस हजार मेगावाट बिजली पैदा होती है, जबकि उद्योगों, कृषि और घरेलू उपयोग के लिए बिजली की जरूरत इससे कई गुनी ज्यादा है। ऐसे में ज्यादा से ज्यादा परमाणु बिजली घर लगाए जाने की जरूरत है। लेकिन परमाणु बिजली घरों को लेकर देश में एक मत नहीं है। ऐसे में सरकार को ले-देकर कोयले या पानी से बिजली पैदा करने का विकल्प झंझट रहित लगता है। पर समस्या यह है कि कोयला और पानी भी उतनी मात्रा में नहीं मिल पा रहे हैं जितनी कि जरूरत है।

सवाल है कि कोयले के इस अपशिष्ट का निदान क्या है? सरकार या एनजीओ की नजर में यह बड़ी समस्या भले न हो, लेकिन है यह एक बड़ी और गंभीर समस्या। आज भले ही इस पर गौर न किया जा रहा हो, लेकिन आने वाले वक्त में सरकार और पर्यावरणविदों को इस तरफ ध्यान देना ही होगा और इससे पैदा होने वाली समस्या के निजात के लिए कोई मुकम्मल समाधान खोजना ही होगा। देश भर में कोयले से चलने वाले जितने भी बिजली घर हैं, उनसे वर्ष भर में कम से कम सौ करोड़ टन कोयले का अपशिष्ट निकलता होगा। बिजली घरों के पास इसके निपटान के लिए न तो कोई सरकारी नियम और आदेश है, न बिजली घरों के पास कोई विकल्प। हालांकि सार्वजनिक रूप से मुफ्त में इसे उठा ले जाने का विज्ञापन भले ही वक्त-दर-वक्त निकलते रहते हैं। दूसरा सवाल इसके उपयोग से जुड़ा है। आमतौर पर कोयले के इस अपशिष्ट का उपयोग सीमेंट बनाने वाली कंपनिया करती हैं या कभी-कभार सड़क निर्माण में इसका इस्तेमाल होता है। लेकिन इससे समस्या पूरी तरह हल नहीं हो पाती। भारी मात्रा में राख पड़ी रह जाती है। सरकार भले ही इसे बेकार मान कर इस तरफ गौर न करे, लेकिन इसका उपयोग कोलतार की सड़क बनाने में बेहतर ढंग से किया जा सकता है। इतना ही नहीं, दूरदराज के गांवों में जहां पहुंचने के कोई साधन नहीं है, या जहां की मिट्टी इस लायक नहीं है कि पैदल वहां पहुंचा जा सके, वहां इसका बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा गमलों में और गड्ढे पाटने में भी इसका बेहतर उपयोग किया जा सकता है। इससे जहां प्रदूषण की समस्या हल होगी, वहीं हजारों एकड़ भूमि जो इस अपशिष्ट के कारण किसी काम में नहीं आ रही है, काम में आने लगेगी।

विमर्श के ठिकाने

अतुल चतुर्वेदी

दुनिया मेरे आगे

चाय की थड़ियों को विमर्श का नया केंद्र या आधुनिक चौपाल कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। छोटी-बड़ी चाय की ये थड़ियां दरअसल मिलने-मिलाने, दो पल बतियाने का सस्ता ठिकाना है। इसे हम अपनी प्रेमिका से गुफ्तगू करने या अभिसार के नितांत निजी क्षणों के रूप में तो उपयोग नहीं कर सकते, लेकिन संक्षिप्त मुलाकात करने, कुछ बातों के आदान-प्रदान के बहाने मिलने के प्राचीन पनघटों की तरह तो उपयोग कर ही सकते हैं। अधिकतर ऐसे शहरों में जहां कामगार आबादी ज्यादा है या जहां प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी का वातावरण है, वहां ये चाय की गुमटियां बहुतायत में पाई जाती हैं। इनके माध्यम से लाखों लोगों को रोजगार भी मिल रहा है।

थड़ी की कड़क अदरक वाली चाय का स्वाद ही अलहदा है। वह स्वाद नजाकत और तमाम तामझाम के साथ दूध, शक्कर, चायपत्ती डाल कर चाय बनाने वाले ब्रिटिश अंदाज में नहीं आ सकता। चाय बनाने की यह ठेठ खांटी शैली ही चाय को सर्वहारा तक जोड़ पाई है और उसका सफर ऊंचे होटलों, महलों से निकल कर आम जन तक पहुंचा है। चाय के ये ठिकाने दिन-रात फल-फूल रहे हैं। यहां पर तीखी राजनीतिक बहसें होती हैं, गंभीर साहित्यिक चर्चाएं होती हैं, दफ्तरों का 'एक दूसरे की शिकायत करें' कार्यक्रम आयोजित होता है और संबंध सुधार कार्यक्रम के तहत नई बिसात भी बिछाई जाती है। चाय की इन थड़ियों पर विद्यार्थी और सरकारी या गैर-सरकारी कर्मचारी से लेकर मजदूर और पार्टी कार्यकर्ता तक थकान मिटाने, ऊर्जा हासिल करने और भड़ास निकालने भी आते हैं।

किसी जमाने में बड़े और नामचीन शहरों में कॉफी हाउस होते थे। इलाहाबाद, लखनऊ, मुंबई और दिल्ली की शामें इससे ही आबाद होती थीं। कलाकारों, पत्रकारों, साहित्यकारों के ये प्रिय ठिकाने थे, जहां खुल कर संवाद होता था, नई योजनाएं जन्म लेती थीं और तीक्ष्ण बहसें भी आकार लेती थीं। आज वे कॉफी हाउस लुप्तप्राय हैं। उनकी जगह बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कॉफी रेस्तरां की शृंखलाएं डाल ली हैं, जहां निजता है, रम्य वातावरण है, लेकिन वैसा जनतंत्र और खुलापन नहीं है। असल में निजीकरण ने मनुष्य को एकाकी छोड़ दिया है, जहां उसे अवकाश तो है, लेकिन संवाद के रास्ते बंद हो गए हैं। वह अलग-थलग पड़ गया है। इन ठिकानों के बंद होने का अभिशाप हम भुगत रहे हैं। हमारी चेतना कुंद हो गई है, संवेदनाओं को काठ मार गया है। बस फेसबुक पर किसी के निधन के मौके पर 'आरआइपी' लिख कर कर्तव्यों की इतिश्री की जा रही है। जब बातचीत ही नहीं होगी, तर्क-वितर्क नहीं होंगे तो दूसरे के विचारों को सुनने-समझने और मनन करने की गुंजाइश ही कहां बचेगी? ऐसे में हम एक अंधानुकरणवादी पिछलग्गू समाज में बदलते जा रहे हैं जो अपने मत के आग्रह की पूंछ पकड़ कर पूरा जीवन पार कर लेता है। न वह अपने कुएं से बाहर झांकना चाहता है, न सोचना-समझना।

हम एक बंद समाज में बदलते जा रहे हैं, कई थोथी आधुनिकताओं के छद्म दावे के बावजूद। चाय की इन छोटी दुकानों ने गांव की चौपाल के ध्वंस रूप की जगह स्थान बना लिया है। शहर की हलचल, घटनाक्रमों की ताजा खबर यहां उपलब्ध है। प्रश्नोत्तरी या जरूरी टिप्पणियों को लोग साझा भी कर रहे हैं और अच्छे या खराब शिक्षक की समीक्षा भी हो रही है। हल्का-फुल्का मजाक और चुटकुले भी तैर रहे हैं और प्रेम प्रसंगों की कानाबाती भी। मेरा शहर कोचिंग के लिए विख्यात है और लाखों विद्यार्थी यहां पढ़ने आते हैं। ये चाय की थड़ियां एक तरह से उनके आश्रय स्थल हैं, थकान के बाद थोड़ा आराम करने के ठिकाने हैं। बल्कि नीरसता के सघन कार्यक्रम की ऊब से कुछ पल चुरा कर वे नई ऊर्जा प्राप्त करते हैं। बाबू चाय वाला, मंगल चाय वाला... जैसे कई नाम हैं जो विद्यार्थियों के बीच खासे लोकप्रिय हैं। ये कोई मशहूर ब्रांड के नाम नहीं हैं, लेकिन इनकी चाय की तासीर और जायका जुबान पर चढ़ चुका है। इसमें से एक चाय वाले ने तो अपने व्यापार को विस्तार देते हुए शहर के दो-तीन क्षेत्रों में अलग अलग शाखाएं भी शुरू कर दी हैं।

चाय की इन दुकानों पर बैठने के लिए समय की कोई पाबंदी नहीं है। कोई शिगूफेबाजी नहीं है, सर्विस टैक्स या जीएसटी का व्यर्थ संकट नहीं है। उधार, नकद, खाते- सब चलते हैं। अपने बेटे से मैंने एक दिन पूछा कि तुम थड़ियों पर चाय पीने क्यों जाते हो, जबकि घर में इतनी अच्छी चाय मिलती है। उसने जवाब दिया कि वहां चाय के साथ जो चर्चा का आनंद है, अखबारों का वाचन है, अलग-अलग लोगों की बातचीत सुन कर समृद्ध होने का सुख है, वह घर में कहां है! घर में तो औपचारिक वातावरण रहता है। मैं निरुत्तर था।

चाय की गुमटियों में धड़कते, नव आकार लेते भारत को पता नहीं हम शहरी चकाचौंध के चलते महसूस कर भी पा रहे हैं या नहीं, लेकिन विमर्श के ये नए मुकाम कम महत्त्वपूर्ण नहीं। किसी समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए तो बेशक शोधपूर्ण हैं।

चौपाल

नागरिकता पर खर्च

बीते कुछ दिनों से देश में जगह-जगह पर नागरिकता कानून और नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटीजन को गैर संवैधानिक बता कर विरोध प्रदर्शन चल रहा है। सरकार का तर्क यह है कि ये कोई संविधान के खिलाफ नहीं, वहीं प्रदर्शनकारियों का कहना है कि ये कानून संवैधानिक और सामाजिक तौर पर गलत है। गौरतलब है कि किसी कानून के तीन पहलू होते हैं। पहला कानूनी, दूसरा सामाजिक और तीसरा आर्थिक पहलू। देश में जगह-जगह पर पहला और दूसरा पक्ष नजर आ रहा है, लेकिन तीसरा यानी आर्थिक पक्ष विरोध के रूप में देखने को नहीं मिल रहा है।

हाल ही में असम में एनआरसी लागू किया गया था। लगभग तीन करोड़ की जनसंख्या में तकरीबन उन्नीस लाख लोग ऐसे पाए गए, जिनके पास भारतीय होने के कागजात नहीं हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इसमें असम में इस पर कुल खर्च लगभग बारह सौ बीस करोड़ रुपए हुआ। मतलब एक व्यक्ति पर एनआरसी का औसतन सरकारी खर्च चार सौ रुपए है। भारत की जनसंख्या लगभग एक सौ पच्चीस करोड़ है। अगर इसे पूरे भारत मे लागू किया जाता है तो कुल खर्च लगभग लगभग पचास हजार करोड़ होगा जो सरकारी कोष पर गहरा प्रभाव डाल सकता है। क्या इस आर्थिक संकट के दौर में यह लागू करना सही होगा? क्या यह सही होगा जब भारत में बेरोजगारी दर शीर्ष पर है? क्या भारत में रहने वाले लोगों पर संसाधनों में कमी की जाएगी?

जिनके पास नागरिकता साबित करने के लिए पर्याप्त कागजात नहीं है, उन्हें रखने लिए कई डिटेंशन सेंटर बनाए गए हैं, जिसमें फिलहाल सिर्फ तीन हजार लोग रह सकते हैं। क्या उन्नीस लाख लोगों को रखने से आर्थिक बोझ नहीं बढ़ेगा? किसी भी कानून का सिर्फ सामाजिक और कानूनी पक्ष के आधार पर समर्थन देना कहां तक सही है? किसी भी कानून का आर्थिक पक्ष सरकार को सामने रखना चाहिए, ताकि इससे सरकार पर बोझ न पड़े। यह ध्यान रखना चाहिए कि भारत अभी एक गहन आर्थिक संकट से जूझ रहा है।

● *विश्वजीत शुक्ला, सिंगरा खुर्द, झारखंड*

युवा का हाल

कई बार बहुत से लोगों को यह कहते हुए सुना है कि युवा इस देश के भविष्य हैं। विगत कुछ दिनों से देश के हालात को देख कर कहा जा सकता है कि देश का भविष्य खतरे में है। राजधानी दिल्ली जैसे शहरों में विद्यार्थी अपने आप को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे। आखिर इसका दोषी कौन है? सरकार या जनता? हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। सरकार ऐसी नीतियों का निर्माण ही क्यों करती है, जिससे जनता हिंसा पर उतारू हो जाए?

दूसरी ओर, जनता भी नीतियों का विरोध हिंसात्मक तरीके से क्यों करती है? क्या यही एक रास्ता है? हिंसा से समाज का अपना ही घाटा है। दूसरी ओर, विद्यार्थियों पर हमले की खबर भी उभर कर आती है। आखिर क्यों एक विद्यार्थी सरकार और जनता के बीच की लड़ाई में पिसता नजर आ रहा है? आखिर उन मासूमों का क्या दोष जो भारत के उच्च केंद्रीय संस्थानों से शिक्षा ग्रहण कर रहें हैं। उन रोती-बिलखती मासूम आंखों से एक ही सवाल उभर कर आता है कि क्या हम सरकार पर से अपना भरोसा खत्म कर दें? इसी बीच कुछ पुलिस हमलों की खबर भी उभर आती है। आखिर ऐसे हालात में मनुष्य करे भी तो क्या करे, जब रक्षक ही भक्षक बन जाए।

सवाल यह नहीं है कि देश में ऐसा क्यों हो रहा है। सवाल यह है कि ऐसी स्थिति ही पैदा क्यों हो रही है। अब हम पुलिस से ऐसी अपेक्षा कैसे करें कि वह अपना व्यवहार बदल ले। आंदोलन को रोकने की कोशिश में वह आज लोगों को मार कर अधमरा कर दे रही है। क्या इस हिंसा का कोई विकल्प नहीं है? क्या उन पर रोक लगाने वाला कोई नहीं? सरकार की कोशिश यह होनी चाहिए कि अगर कोई उससे सवाल करे तो जवाब देने में उसे शर्मिंदगी महसूस न हो।

● *आयुष द्विवेदी, दिल्ली विवि*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

कानून के हाथ

उन्नाव में बलात्कार के चर्चित मामले में आखिर न्याय ने अपना काम किया। लोगों का भरोसा बरकरार रहा। भाजपा के पूर्व विधायक कुलदीप सेंगर को दोषी मानते हुए दिल्ली की तीस हजारी कोर्ट ने उम्रकैद की सजा सुनाई। अदालत ने स्पष्ट कहा कि जीवन की अंतिम सांस तक वे जेल में रहेंगे। निस्संदेह अदालत के इस फैसले से न केवल आम जनमानस का न्याय पर भरोसा कायम रहा है, बल्कि यह भी दिन के उजाले की तरह साफ हो गया है कि कानून की नजर में सब बराबर हैं। अपराध और अपराधी कितना भी बड़ा क्यों न हो, कानून उससे बड़ा है। देश में आधी आबादी को लेकर इस वक्त जो सुरक्षा और संरक्षा के मसले पर जो भय और आक्रोश का माहौल बना है, उसमें यह फैसला एक मील का पत्थर साबित होगा।

समाजशास्त्रीय अनुभव कहते हैं कि सेंगर ने सार्वजनिक जीवन में उत्तरदायित्व वाले पद पर रहते हुए जो आपराधिक हरकत की, वह किसी भी सूरत में माफी लायक नहीं है। सेंगर ने बतौर विधायक की भूमिका में होने के बावजूद नाबालिग पीड़िता का बलात्कार किया। आरोपों के पुष्ट होने के बावजूद वह विधायक कैसे बना रहा? क्या उसे अपनी जिम्मेदारियों का एहसास नहीं था? उसकी ऐसी हरकत से समाज को क्या संदेश मिला होगा? मेरी राय में बलात्कार और अपराधी की पहचान के बाद इस अपराध में फैसले की समय-सीमा अनिवार्य हो। केस से जुड़े पुलिस अफसर, वकील और जजों की जवाबदेही तय हो, क्योंकि कई बार देरी से हुआ न्याय इतना बेमानी साबित हो जाता है कि न्याय सुनने और उसे महसूस करने के लिए पीड़िता या उसका परिवार जिंदा भी नहीं रहता है।

● *हर्ष वर्द्धन, कदमकुआं, पटना*

शिक्षा के मूल्य

शिक्षा की बात जब हम करते हैं तो सर्वप्रथम यह सोचा जाए कि शिक्षा किसलिए दी जाए। अगर शिक्षा को व्यावहारिक रूप में देखा जाए तो 'शिक्षा मनुष्य के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाती है।' शिक्षा का वास्तव में यही है। इसके साथ ही समाज को भी प्रगतिशील मूल्यों के साथ जोड़ना शिक्षा है। शिक्षा ये कभी नहीं कहती है कि अगर आप शिक्षित हो गए हैं तो दूसरों को नीचा दिखाएं। बल्कि शिक्षा जाति, धर्म, मजहब और पंथ के बीच विभिन्न प्रकार के भेदों से मुक्त करती है। इसलिए भारत के महान शिक्षा दार्शनिक अरविंदो ने शिक्षा के चार महत्त्व को बताया है, जिसमें चित्त, बुद्धि, मनस और ध्यान को बताया है। शिक्षा मनुष्य में विश्वास को जन्म देती है, न कि घमंड को। इसलिए शिक्षा के मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करने के साथ ही आपके व्यवहार में भी परिलक्षित करने में सहायक होता है, जिससे एक प्रगतिशील समाज का निर्माण होता है।

● *शैलेश मिश्र, बीएचयू, वाराणसी*

www.readwhere.com